A Pratibha Spandan's Journal

CONFLUENCE OF KNOWLEDGE
(A Multidisciplinary International Peer-Reviewed/Refereed Journal)
ISSN 2320–5237 | Volume 13, Issue 03, April 2026 (Special Issue)
http://cok.pratibha-spandan.org | © The Author(s) 2026

मण्डी जनपद के प्रसिद्ध लोकनृत्य एवं बदलते प्रतिमान: मूल्य, संरक्षण और संवर्धन की दृष्टि से

DR. HEM RAJ
ASSISTANT PROFESSOR, MUSIC (VOCAL), RAJIV GANDHI GOVT. COLLEGE CHAURA-MAIDAN, SHIMLA, HIMACHAL PRADESH, INDIA

सारांश

हिमाचल प्रदेश की लोकसंस्कृति अपनी भौगोलिक विविधता, देव-परम्पराओं, लोकविश्वासों, सामाजिक संरचनाओं तथा सामुदायिक जीवन के कारण विशिष्ट पहचान रखती है। इस सांस्कृतिक परिदृश्य में मण्डी जनपद की लोकपरम्पराओं का विशेष महत्त्व है। यहाँ के लोकनृत्य केवल मनोरंजन अथवा उत्सव की अभिव्यक्ति नहीं, बल्कि स्थानीय समाज की ऐतिहासिक स्मृति, धार्मिक आस्था, सामाजिक संबंधों, जीवन-व्यवहार और सामुदायिक चेतना के सजीव माध्यम हैं। मण्डी में नाटी, लुड्डी, लुड्डी-लुहासड़ी, नागरी, गिद्धा और बुढ़ड़ा जैसे लोकनृत्य विभिन्न सामाजिक एवं सांस्कृतिक अवसरों पर प्रचलित रहे हैं। इनके साथ लोकगीत, लोकवाद्य, वेशभूषा, लय-ताल तथा विशिष्ट प्रदर्शन-परम्पराएँ जुड़ी हुई हैं।

आधुनिकता, नगरीकरण, शिक्षा, मनोरंजन के बदलते साधनों, आर्थिक गतिविधियों तथा जीवन-शैली में परिवर्तन के कारण इन लोकनृत्यों के पारम्परिक प्रदर्शन-संदर्भ में परिवर्तन आया है। अनेक नृत्य अब अपने मूल सामाजिक परिवेश की अपेक्षा विद्यालयों, महाविद्यालयों, मेलों और सांस्कृतिक मंचों पर अधिक दिखाई देते हैं। इससे इनके प्रचार-प्रसार की सम्भावनाएँ बढ़ी हैं, किन्तु पारम्परिक गीत-संपदा, वादक-परम्परा और सामुदायिक संदर्भ के कमजोर होने की चुनौती भी सामने आई है। प्रस्तुत शोध-पत्र में मण्डी जनपद के प्रमुख लोकनृत्यों के सांस्कृतिक स्वरूप, संगीतात्मक विशेषताओं, सामाजिक मूल्यों तथा वर्तमान परिवर्तनों का संक्षिप्त विवेचन करते हुए इनके संरक्षण एवं संवर्धन की सम्भावनाओं पर विचार किया गया है।

प्रमुख शब्द *- मण्डी जनपद, लोकनृत्य, लोकसंगीत, नाटी, लुड्डी, लुहासड़ी, नागरी, गिद्धा, बुढ़ड़ा, देवपरम्परा, लोकगीत, लोकवाद्य, सांस्कृतिक विरासत, संरक्षण, संवर्धन।*

भूमिका

लोकनृत्य किसी समाज की सांस्कृतिक स्मृति का सजीव रूप होते हैं। इनके माध्यम से समुदाय अपने धार्मिक विश्वासों, सामाजिक संबंधों, उत्सवों, श्रम-अनुभवों तथा जीवन की विविध परिस्थितियों को अभिव्यक्त करता है। लोकनृत्य की विशेषता उसकी सामूहिकता हैय वह किसी एक कलाकार की व्यक्तिगत अभिव्यक्ति न होकर समुदाय के सामूहिक अनुभव से विकसित होता है। इसलिए लोकनृत्य को केवल नृत्यगत गतिविधि मानना उसके व्यापक सांस्कृतिक स्वरूप को सीमित करना होगा। इसके भीतर लोकगीत, लोकवाद्य, भाषा, वेशभूषा, सामाजिक व्यवहार और धार्मिक आस्था जैसे अनेक तत्त्व परस्पर जुड़े रहते हैं।

मण्डी जनपद की लोकसंस्कृति इसी व्यापक अर्थ में समृद्ध है। रियासती काल से लेकर स्वतंत्रता के पश्चात् आधुनिक प्रशासनिक व्यवस्था तक यहाँ की सामाजिक-सांस्कृतिक संरचना में परिवर्तन हुए, फिर भी लोकजीवन से जुड़ी अनेक परम्पराएँ विभिन्न रूपों में बनी रहीं। पर्वतीय भौगोलिक परिस्थितियों तथा आसपास के क्षेत्रों से निरन्तर सांस्कृतिक सम्पर्क ने यहाँ की लोकपरम्पराओं को विविधता प्रदान की। मंडयाली बोली लोकगीतों की अभिव्यक्ति का महत्त्वपूर्ण माध्यम रही है और इसके माध्यम से प्रेम, विरह, हास्य, पारिवारिक संबंध तथा दैनिक जीवन की अनुभूतियाँ सहज रूप में व्यक्त होती हैं।

मण्डी की देव-परम्परा और लोकनृत्य

मण्डी की सांस्कृतिक संरचना में देव-परम्परा का विशेष महत्त्व है। स्थानीय देवताओं की यात्राएँ, धार्मिक अनुष्ठान, मेले और सामुदायिक आयोजन लोकसंगीत एवं लोकनृत्य के लिए स्वाभाविक अवसर प्रदान करते रहे हैं। देव-यात्राओं के दौरान शहनाई, ढोल-नगाड़ा आदि वाद्यों का प्रयोग तथा सामूहिक नृत्य लोकधर्म और लोककला के परस्पर संबंध को स्पष्ट करता है।

मण्डी के लोकनृत्यों में कलाकार और दर्शक के बीच स्पष्ट विभाजन नहीं मिलता। अनेक अवसरों पर समुदाय स्वयं नृत्य और गायन में भाग लेता है। इस कारण लोकनृत्य सामूहिक सहभागिता, सामाजिक एकता और सांस्कृतिक निरन्तरता का माध्यम बन जाता है। नाटी तथा लुहासड़ी जैसे नृत्यों का धार्मिक एवं देव-सम्बन्धी अवसरों से जुड़ाव इस सांस्कृतिक संबंध को और स्पष्ट करता है।

मण्डी जनपद के प्रमुख लोकनृत्य

नाटी

नाटी हिमाचल प्रदेश का अत्यन्त लोकप्रिय सामूहिक लोकनृत्य है और मण्डी जनपद में भी इसकी व्यापक परम्परा रही है। चैहार, करसोग, चच्योट, सराज आदि क्षेत्रों में स्थानीय गीत, बोली और नृत्यगत शैली के अनुरूप इसके विभिन्न रूप देखने को मिलते हैं। विवाह, उत्सव, मेले तथा अन्य मांगलिक अवसरों पर नाटी सामुदायिक उल्लास की अभिव्यक्ति बनती रही है।

नाटी की प्रमुख विशेषता सामूहिकता और लयात्मक समन्वय है। नर्तक समूह में परस्पर जुड़े होकर नृत्य करते हैं और गीत की पंक्ति तथा लय नृत्य की गति को निर्धारित करती है। इस प्रकार नाटी में व्यक्ति की अपेक्षा समूह की एकता और सामूहिक लय अधिक महत्त्वपूर्ण होती है।

लुड्डी

लुड्डी मण्डी जनपद का प्रसिद्ध पारम्परिक लोकनृत्य है, जिसका विशेष प्रचलन बल्ह क्षेत्र में रहा है। विवाह, मांगलिक अवसरों, उत्सवों और सामुदायिक समारोहों में स्त्री-पुरुष सामूहिक रूप से इसका प्रदर्शन करते रहे हैं। पारम्परिक परिवेश में इसका प्रदर्शन कई घंटों तक चलने की स्मृति लोकपरम्परा में मिलती है।

लुड्डी के विकास में हेस्सी समुदाय के पारम्परिक वादकों की भूमिका उल्लेखनीय रही है। शहनाई तथा ढोल-नगाड़ा वादन से जुड़े इन वादकों ने इसकी संगीतात्मक संरचना को आधार प्रदान किया। लुड्डी के गीतों में हास्य, विनोद, श्रृंगार तथा सामाजिक जीवन के विविध पक्षों का चित्रण मिलता है। इसके पद सामान्यतः छोटे होते हैं तथा स्थायी-अंतरा जैसी संरचनात्मक विशेषताएँ दिखाई देती हैं। नृत्य की गति प्रायः धीमी से आरम्भ होकर क्रमशः तीव्र होती जाती है।

लुड्डी के ताल-प्रयोग में स्थानीय ताल-परम्परा की विशिष्टता दिखाई देती है। "घिन्ना घिझां घिना घिझां" तथा "घिन्ना घिझा घिना तिरकिड़ये" जैसे ताल-बोल उल्लेखनीय हैं। कलाकारों का उत्साह बढ़ाने के लिए "शाबाश, शाबाश, शाबाश" जैसी सामूहिक पुकारें भी प्रदर्शन का अंग रही हैं। शहनाई, ढोल-नगाड़ा, करनाल और रणसिंघा जैसे वाद्य इसकी सामूहिक ध्वनि-संरचना को प्रभावशाली बनाते हैं।

लुड्डी की धुनों में देश, सारंग, झिंझोटी, खमाज और तिलक कामोद जैसे शास्त्रीय रागों से साम्य रखने वाली रागात्मक छायाएँ देखी जा सकती हैं, किन्तु लोकधुनों को सीधे शास्त्रीय रागों के रूप में वर्गीकृत करना उचित नहीं है। लोकसंगीत की अपनी स्वतंत्र धुनात्मक संरचना होती है।

लुड्डी की वेशभूषा में भी स्थानीय सांस्कृतिक पहचान दिखाई देती है। पुरुषों द्वारा कुर्ता, सुथणु अथवा पायजामा, गुलाबी पगड़ी और कमरबंद तथा महिलाओं द्वारा घाघरा, चोलू, दुपट्टा, सुथणु अथवा पायजामा और पारम्परिक आभूषण धारण करने की परम्परा रही है। इस वेशभूषा में स्थानीय मंडयाली पहचान के साथ उत्तर भारतीय लोकपरिधान की व्यापक परम्परा से भी दृश्य-साम्य दिखाई देता है।

वर्तमान समय में लुड्डी पूरी तरह समाप्त नहीं हुई है, किन्तु उसका पारम्परिक सामाजिक परिवेश संकुचित हुआ है। अब इसका प्रदर्शन विद्यालयों, महाविद्यालयों, सांस्कृतिक कार्यक्रमों, मेलों तथा मंचीय आयोजनों में अधिक दिखाई देता है। कुछ ग्रामीण क्षेत्रों में इसकी परम्परा अभी भी जीवित है। वर्तमान संकट केवल प्रदर्शन के सीमित होने का नहीं, बल्कि विस्तृत गीत-भण्डार के कुछ लोकप्रिय गीतों तक सिमटने का भी है। अतः मौखिक गीत-संपदा का दस्तावेजीकरण अत्यन्त आवश्यक है। मूल सामग्री में लुड्डी के वर्तमान स्वरूप और उसकी गीत-संपदा के इसी संकट को प्रमुखता दी गई है।

लुड्डी-लुहासड़ी

लुड्डी-लुहासड़ी मण्डी जनपद के लड्ड-भड़ोल तथा चैहार क्षेत्र से जुड़ी विशिष्ट पारम्परिक नृत्यपरम्परा है। यद्यपि इसका संबंध लुड्डी से है, फिर भी इसकी अपनी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, गीत-संरचना और प्रदर्शन-शैली है। पारम्परिक स्मृति के अनुसार लड्ड क्षेत्र के लोग नमक प्राप्त करने के लिए कई दिनों की यात्रा करके गुम्मा आदि क्षेत्रों की ओर जाते थे। यात्रा में स्त्री-पुरुष दोनों सम्मिलित होते और रात्रि विश्राम के समय थकान दूर करने तथा सामूहिक मनोरंजन के लिए गीत-नृत्य प्रस्तुत किए जाते थे।

इस परम्परा में लाठी, बिबड़ू और खलड़ू जैसे वस्तुगत प्रतीकों का विशेष महत्त्व है। लाठी यात्रा के दौरान सुरक्षा का साधन थी, जो आगे चलकर नृत्य की गतियों का अंग बनी। बिबड़ू जल रखने तथा खलड़ू नमक ढोने से संबंधित पारम्परिक वस्तुएँ थीं। इस प्रकार नृत्य की सामग्री स्वयं उस सामाजिक-आर्थिक जीवन की स्मृति को सुरक्षित रखती है जिसमें यह परम्परा विकसित हुई।

CONFLUENCE OF KNOWLEDGE
(A Multidisciplinary International Peer-Reviewed/Refereed Journal)
ISSN 2320–5237 | Volume 13, Issue 03, April 2026 (Special Issue)
http://cok.pratibha-spandan.org | © The Author(s) 2026

लुड्डी-लुहासड़ी की प्रस्तुति विभिन्न चरणों में विकसित होती है। आरम्भ में धीमी गति के गढ़िया गीत, तत्पश्चात् लाहौली अथवा लुहासड़ी गीतों में प्रेम, विरह, श्रृंगार और हास्य, फिर मण्डी की लुड्डी से जुड़े गीत तथा अंतिम चरण में तीव्र गति और लाठी-प्रयोग इसकी गतिशीलता को बढ़ाते हैं। पक्की कणका अथवा बल्हारे रोपे तथा ध्याड़ा भर काटेरा गलूरिया जातरा जैसे गीतों को सामान्य मण्डी लुड्डी के गीतों के रूप में नहीं, बल्कि लुड्डी-लुहासड़ी से जुड़े क्षेत्रीय गीतों के रूप में देखना उचित है।

आधुनिक जीवन-व्यवस्था, नमक लाने की पुरानी व्यवस्था के समाप्त होने, मनोरंजन के आधुनिक साधनों तथा पारम्परिक वादक परिवारों के अपने पैतृक व्यवसाय से दूर होने के कारण इसकी परम्परा प्रभावित हुई है। अतः इसके संरक्षण में नृत्य की गतियों के साथ गीत, वाद्य, वेशभूषा, पारम्परिक वस्तुएँ और प्रदर्शन-संदर्भ भी सुरक्षित किए जाने चाहिए।

नागरी

नागरी नृत्य का संबंध 'नगर' शब्द से माना जाता है और इसे मुख्यतः महिलाओं द्वारा प्रस्तुत किए जाने वाले लोकनृत्य के रूप में देखा जाता है। इसके बाहरी रूप में पंजाब के गिद्धे से कुछ समानताएँ दिखाई देती हैं, किन्तु इसके गीत, भाषा, लय और सांस्कृतिक आधार हिमाचली लोकजीवन से जुड़े हैं।

नागरी की विशेषता सामूहिकता के साथ व्यक्तिगत अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता है। समूह में प्रत्येक महिला गीत की भावभूमि के अनुसार अपनी नृत्यगत अभिव्यक्ति प्रस्तुत कर सकती है। इसके गीतों में हास्य, स्त्री-जीवन, पारिवारिक संबंध और दैनिक अनुभवों की अभिव्यक्ति मिलती है। इससे यह नृत्य सामूहिकता के भीतर व्यक्तिगत रचनात्मकता का अवसर प्रदान करता है।

गिद्धा

गिद्धा मुख्यतः महिलाओं से संबंधित सामूहिक लोकनृत्य है। विवाह, संतान-जन्म, उत्सव तथा अन्य मांगलिक अवसरों पर इसके प्रदर्शन की परम्परा रही है। मण्डी में इसके रूप पर पंजाब और समीपवर्ती क्षेत्रों के सांस्कृतिक सम्पर्क का प्रभाव भी देखा जा सकता है।

सामान्यतः एक या दो महिलाएँ नृत्य करती हैं और अन्य महिलाएँ गीत गाते हुए तालियाँ बजाती हैं। नृत्य करने वाली महिला गीत की पंक्तियों और भाव के अनुसार अपनी गतियों में परिवर्तन करती है। इसकी शक्ति सहजता और सामूहिक सहभागिता में है। वर्तमान समय में मंचीय प्रस्तुतियों के कारण इसके पारम्परिक गीतों और स्थानीय भंगिमाओं का स्थान अपेक्षाकृत मानकीकृत प्रस्तुति लेती जा रही है।

बुढ़ड़ा नृत्य

बुढ़ड़ा मण्डी जनपद की विशिष्ट लोकपरम्पराओं में से एक है। इसका संबंध बल्ह के साथ मण्डी सदर, सुकेत, नाचन, करसोग, चच्योट, चैहार और सराज आदि क्षेत्रों से रहा है। इसे केवल लोकनृत्य अथवा केवल लोकनाट्य कहना इसके पूर्ण स्वरूप को व्यक्त नहीं करता। प्रत्यक्ष संवाद सीमित होते हुए भी पात्रों का क्रमबद्ध प्रवेश और नृत्य-गीत की प्रधानता इसे लोकनाट्यात्मक विशेषता प्रदान करती है।

मण्डी की शैव परम्परा के संदर्भ में इसका सांस्कृतिक महत्त्व विशेष है। पारम्परिक प्रदर्शन में सर्वप्रथम भगवान शिव अपने नंदी के साथ लोगों के बीच पहुँचते हैं। इसके बाद बुढ़ा नृत्य प्रस्तुत होता है तथा साहिब और मेम अथवा चन्द्रावली, साधु, डंडू और भूत-प्रेत जैसे पात्र क्रमशः प्रवेश करते हैं। ब्रिटिश शासन के आगमन के बाद गोरा अंग्रेज और मेम साहब जैसे पात्रों का जुड़ना बदलते सामाजिक अनुभवों की सांस्कृतिक अभिव्यक्ति के रूप में देखा जा सकता है।

शहनाई, ढोल-नगाड़ा, करनाल और रणसिंघा जैसे वाद्य इसके प्रदर्शन को प्रभावशाली बनाते हैं। "ए-ए यहाँ" जैसे स्वर-उद्गार सामूहिकता और उत्साह उत्पन्न करते हैं। पुराने समय में नृत्य के अंत में कलाकार सामूहिक रूप से कुछ संवाद अथवा पद बोलते थे, जो इसकी लोकनाट्यात्मक संरचना को स्पष्ट करते हैं।

वर्तमान समय में बुढ़ड़ा का पारम्परिक ग्रामीण परिवेश अत्यन्त सीमित हो गया है। कुछ ही सांस्कृतिक दल इसकी प्रस्तुति करते हैं और अनेक गाँवों में पुरानी परम्परा लगभग समाप्त हो चुकी है। अतः इसके पात्रों का क्रम, गीत, संवाद, वाद्य, वेशभूषा तथा प्रदर्शन-संदर्भ का दस्तावेजीकरण आवश्यक है।

लोकनृत्यों के सांस्कृतिक मूल्य

मण्डी के लोकनृत्यों का प्रमुख मूल्य उनकी सामुदायिकता है। विवाह, मेले, देव-यात्रा और उत्सव जैसे अवसरों पर ये सामाजिक संबंधों को सुदृढ़ करते तथा सामूहिक सहभागिता की भावना विकसित करते हैं। इनके माध्यम से व्यक्ति स्वयं को समुदाय के साथ जोड़ता है।

इन नृत्यों में स्थानीय इतिहास और सामाजिक स्मृति भी सुरक्षित है। लुड्डी-लुहासड़ी में नमक यात्राओं की स्मृति, बुढ़ड़ा में विभिन्न ऐतिहासिक एवं सामाजिक पात्रों का प्रवेश तथा देव-सम्बन्धी नृत्यों में धार्मिक आस्था लोकजीवन के विविध पक्षों को संरक्षित करते हैं। इसी प्रकार मंडयाली बोली में रचे गीत स्थानीय शब्दावली, मुहावरों और जीवन-अनुभवों के संरक्षण में महत्त्वपूर्ण हैं।

वेशभूषा, आभूषण और लोकवाद्य भी सांस्कृतिक पहचान के वाहक हैं। शहनाई, ढोल-नगाड़ा, करनाल और रणसिंघा केवल वाद्य नहीं, बल्कि सामाजिक और धार्मिक अवसरों की सांस्कृतिक पहचान से जुड़े हुए हैं।

बदलते प्रतिमान

आधुनिकता ने मण्डी के लोकनृत्यों को पूर्णतः समाप्त नहीं किया है, बल्कि उनके प्रदर्शन-संदर्भ को बदल दिया है। पारम्परिक सामाजिक अवसरों के साथ-साथ विद्यालयों, महाविद्यालयों, सरकारी कार्यक्रमों, मेलों, पर्यटन आयोजनों और मंचीय प्रस्तुतियों में इनके प्रदर्शन बढ़े हैं। इससे नई पीढ़ी तक लोकनृत्यों की पहुँच बनी है, किन्तु मंचीयकरण के कारण पारम्परिक स्वरूप के संकुचित होने की सम्भावना भी बढ़ी है।

मंचीय प्रस्तुति के लिए समय सीमित होने के कारण लम्बी पारम्परिक प्रस्तुतियों को छोटा किया जाता है और अनेक गीतों में से केवल लोकप्रिय गीत चुने जाते हैं। वेशभूषा में भी आधुनिक अथवा मंचीय पोशाकों का प्रयोग बढ़ रहा है। इसी प्रकार पारम्परिक वादकों की नई पीढ़ी अन्य व्यवसायों की ओर जा रही है। फलतः शहनाई, ढोल-नगाड़ा, करनाल और रणसिंघा जैसे वाद्यों की परम्परा के सामने उत्तराधिकार की चुनौती है।

फिर भी लोकनृत्य के प्रत्येक परिवर्तन को केवल पतन मानना उचित नहीं है। लोकसंस्कृति गतिशील होती है और समय के साथ रूप बदलती है। वास्तविक आवश्यकता यह है कि परिवर्तन के साथ इनकी मूल सांस्कृतिक पहचान, लोकभाषा, गीत-संपदा, ताल, वाद्य और सामुदायिक संदर्भ सुरक्षित रहें। मूल शोध-सामग्री भी मंचीय प्रस्तुति और पारम्परिक स्वरूप के बीच संतुलन को संरक्षण की प्रमुख आवश्यकता मानती है।

संरक्षण एवं संवर्धन

मण्डी के लोकनृत्यों के संरक्षण के लिए सर्वप्रथम व्यवस्थित दस्तावेजीकरण आवश्यक है। प्रत्येक नृत्य के गीत, धुन, ताल, वाद्य, वेशभूषा, नृत्य-चाल, प्रदर्शन-अवसर और स्थानीय नामों का डिजिटल अभिलेख तैयार किया जाना चाहिए। वरिष्ठ गायकों और वादकों के साक्षात्कार तथा उच्च गुणवत्ता वाली ऑडियो-वीडियो रिकॉर्डिंग इस दिशा में विशेष उपयोगी हो सकती हैं।

विद्यालय और महाविद्यालय लोकनृत्यों को केवल वार्षिक सांस्कृतिक कार्यक्रमों तक सीमित न रखकर उनके इतिहास, गीत, ताल और सांस्कृतिक संदर्भ से विद्यार्थियों को परिचित करा सकते हैं। स्थानीय कलाकारों को प्रशिक्षण हेतु आमंत्रित करना परम्परा के पीढ़ीगत हस्तांतरण में सहायक होगा।

लोकवाद्यों के संरक्षण पर भी विशेष ध्यान देना आवश्यक है। पारम्परिक वादकों की पहचान कर उन्हें प्रशिक्षणदाता के रूप में प्रोत्साहित किया जाना चाहिए तथा युवा पीढ़ी के लिए शहनाई, ढोल-नगाड़ा, करनाल और रणसिंघा आदि के प्रशिक्षण की स्थानीय व्यवस्था विकसित की जानी चाहिए।

भाषा एवं संस्कृति से संबंधित संस्थाओं, विश्वविद्यालयों, महाविद्यालयों और स्थानीय सांस्कृतिक संगठनों के बीच समन्वय आवश्यक है। वार्षिक आयोजनों के साथ दीर्घकालिक शोध, प्रशिक्षण और अभिलेखीकरण की योजनाएँ बनाई जानी चाहिए। डिजिटल माध्यमों द्वारा गीत, धुन, ताल, वाद्य, कलाकार और प्रदर्शन-संदर्भ को एक साथ सुरक्षित किया जा सकता है।

निष्कर्ष

मण्डी जनपद के लोकनृत्य यहाँ के सामाजिक जीवन, धार्मिक आस्था, इतिहास, लोकभाषा और सामुदायिक चेतना के महत्त्वपूर्ण संवाहक हैं। नाटी की सामूहिकता, लुड्डी की गीत-वाद्य परम्परा, लुड्डी-लुहासड़ी में निहित नमक-यात्राओं की सामाजिक स्मृति, नागरी और गिद्धा में स्त्री-अभिव्यक्ति तथा बुढ़ड़ा में लोकनृत्य और लोकनाट्य का समन्वय मण्डी की सांस्कृतिक विविधता को स्पष्ट करता है।

CONFLUENCE OF KNOWLEDGE
(A Multidisciplinary International Peer-Reviewed/Refereed Journal)
ISSN 2320–5237 | Volume 13, Issue 03, April 2026 (Special Issue)
http://cok.pratibha-spandan.org | © The Author(s) 2026

वर्तमान में इन नृत्यों का स्वरूप परिवर्तित हो रहा है। मंचीय प्रस्तुतियों ने इन्हें व्यापक पहचान दी है, किन्तु इनके मूल सामाजिक संदर्भ, विस्तृत गीत-संपदा और पारम्परिक वादक-परम्परा के कमजोर होने का संकट भी सामने है। इसलिए संरक्षण का उद्देश्य केवल नृत्य की बाहरी गतिविधियों को बचाना नहीं होना चाहिए, बल्कि उसके गीत, भाषा, ताल, वाद्य, वेशभूषा, पारम्परिक ज्ञान और सामुदायिक संदर्भ को भी सुरक्षित रखना आवश्यक है।

मण्डी के लोकनृत्यों की सबसे बड़ी शक्ति उनकी सामुदायिकता और जीवंतता है। अतः स्थानीय समुदाय, पारम्परिक कलाकार, शोधकर्ता, शैक्षणिक संस्थान तथा भाषा-संस्कृति से संबंधित संस्थाएँ परस्पर सहयोग से कार्य करें। लोकनृत्य का बाहरी रूप सुरक्षित रहना पर्याप्त नहीं हैय उसके भीतर निहित लोकस्मृति, लोकभाषा, लोकसंगीत और सामुदायिक चेतना का संरक्षण ही वास्तविक सांस्कृतिक संरक्षण है।

संदर्भ ग्रंथ

1. केशव आनंद, हिमाचल का लोक संगीत, संगीत नाटक अकादमी, नई दिल्ली, 1982।
2. डॉ. चमन लाल वर्मा, मण्डियाली संस्कृति एवं सांगीतिक अध्ययन, निर्मल पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 1997।
3. डॉ. राजीव शर्मा, हिमाचल प्रदेश के अवनत वाद्य तथा वादन शैली, सत्यम प्रकाशन, नई दिल्ली, 2019। ।
4. मोहन राठौर (सम्पादक), हिमाचल प्रदेश का लोक संगीत, हिमाचल कला संस्कृति भाषा अकादमी, शिमला, 2000।
5. सुदर्शन वशिष्ठ (सम्पादक), मण्डी देव मिलन, हिमाचल कला संस्कृति भाषा अकादमी, शिमला, 1997।

साक्षात्कार

1. श्री देवेन्द्र शास्त्री, डुगराईं, बल्ह, मंडी, जनवरी 2026।